

स्कूल संस्कृति की प्रकृति और उद्देश्य

प्रकाश अय्यर

समाज में प्रवेश के रूप में स्कूली शिक्षा

स्कूल को मुख्यतः पाठ्यचर्या से जोड़ना और सिर्फ पाठ्यचर्या को ही शिक्षा का साधन मानना हमारे लिए आम बात है। लेकिन स्कूल का अर्थ इससे कहीं ज्यादा व्यापक है। शुरुआती कुछ सालों में बच्चे परिवार, रिश्तेदारों और पड़ोसियों के इर्द-गिर्द एक सीमित भौगोलिक दायरे में बड़े होते हैं, तथा उनकी परम्पराओं और रीतियों के अभ्यस्त होते जाते हैं। फिर वे इस दायरे से निकलकर स्कूल में आते हैं जो शुरुआत में, सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति तथा वहाँ पालन की जाने वाली संस्कृति और रीतियाँ, दोनों ही उनके लिए अनजान होते हैं। स्कूल वह पहला सामाजिक स्थान होता है, बच्चे जिसके प्राथमिक निवासी होते हैं और यह सामाजिक संस्थानों में बच्चों के प्रवेश की शुरुआत होती है, जहाँ वे स्वायत्त व्यक्तियों के रूप में निवास करते हैं।

बच्चे वहाँ रिश्ते बनाते हैं, मानकों को समझते हैं, और नई रीतियों व परम्पराओं से परिचित होते हैं, जैसे कक्षा के नियमों का पालन करना, कक्षा में ध्यान देना, कक्षावर्क और गतिविधियाँ करना, जिम्मेदारियाँ लेना, दोस्त बनाना, चीजें बाँटना और धीरे-धीरे सेकेण्डरी स्कूल तक आते-आते उन्हें इस बात की समझ आने लगती है कि एक स्वायत्त व्यक्ति होने का क्या मतलब होता है। इस प्रक्रिया में, वे अनोखी सामाजिक और व्यक्तिगत पहचानों से अवगत होते हैं और इन्हें बनाते भी हैं। एक तरह से, स्कूल उनके लिए वयस्क जीवन और स्व-निर्णय की प्रक्रिया में दाखिल होने का द्वार होता है।

स्कूली शिक्षा के अनुभव के तीन पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सबसे पहले, स्कूल बच्चों के लिए जिम्मेदारियों के साथ स्वतंत्र जीवन की शुरुआत है – उन्हें न केवल पाठ्यक्रम सीखना है बल्कि यह भी प्रदर्शित करना है कि उन्होंने सीखा है। दूसरे, वे दूसरों के साथ कैसे व्यवहार करना है और उन्हें क्या पसन्द है और क्या नहीं, इस बारे में महत्वपूर्ण जीवन विकल्प चुनकर अपनी व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तित्व बनाते हैं। तीसरा, इस अनुभव से, वे इस बारे में एक दृष्टिकोण विकसित करते हैं कि समाज कैसे काम करता है, और एक वयस्क होना क्या है।

बच्चे निष्क्रिय शिक्षार्थी नहीं हैं जो बिना कुछ सवाल उठाए उन्हें जो भी पढ़ाया जाता है उसे स्वीकार कर लेते हैं। मनुष्य स्वाभाविक रूप से स्वायत्त होते हैं और एक उम्र के बाद वे औपचारिक शैक्षणिक क्रियाओं को समझने लगते हैं और जान जाते हैं कि उन्हें सिखाया जा रहा है और उनसे अपेक्षित है कि वे सीखें। यह स्वायत्तता खुद को उस रूप में पेश करती है, जिस तरह वे स्कूल की सांस्कृतिक रीतियों से पेश आते हैं, जैसे कुछ नियमों को मानकर और कुछ की अनदेखी करके, उन मानकों को ध्वस्त करके जिन्हें लेकर वे पूरी तरह आश्वस्त नहीं हों, और कभी-कभी विरोध प्रदर्शनों तथा बगावत के माध्यम से। उदाहरण के लिए, कुछ साल की स्कूली शिक्षा के बाद, विद्यार्थी कुछ शिक्षकों व कुछ विषयों के प्रति पूर्वाग्रही हो जाते हैं और कुछ कक्षाओं में अन्य कक्षाओं की तुलना में अधिक ध्यान देते हैं। स्कूल के मानकों को ध्वस्त करना अकसर सूक्ष्म तरीकों में सामने आता है, जैसे होमवर्क न करना, कक्षा में जानबूझकर देर से पहुँचना, या कुछ कक्षाओं में ध्यान देने के बजाय बस गोदा-गादी करना या कॉमिक्स पढ़ते रहना। विरोध और विद्रोह भी मौन तरीकों से होते हैं, जैसे कुछ विषयों को पढ़ने से मना ही कर देना और उन्हें सीखने की बिल्कुल भी परवाह न करना।

औपचारिक पाठ्यचर्या तथा स्कूल की संस्कृति

स्कूल में सीखना और सिखाना सिर्फ औपचारिक पाठ्यचर्या के माध्यम से ही नहीं होता। स्कूल ऐसी प्रक्रियाएँ, प्रोटोकॉल और मानक तैयार करते हैं, जो पाठ्यचर्या का आदान-प्रदान सम्भव बनाते हैं। ये सभी अतिरिक्त प्रक्रियाएँ और मानक स्कूल की पहचान के निर्माण में योगदान करते हैं। उदाहरण के लिए, यूनिफार्म या ड्रेस कोड, कक्षा में बैठने की व्यवस्था, शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्ध, शिक्षकों को दी गई स्वायत्तता का स्तर, विद्यार्थियों के व्यवहारों से जुड़े नियम, प्रातःकालीन सभा का प्रारूप, शिक्षकों की बैठकों तथा अभिभावक-शिक्षक बैठकों की बारम्बारता व प्रकृति, वगैरह। ये सभी बातें उन रीतियों की व्यवस्था का हिस्सा हैं, जिन्हें बच्चे अनुभव करते हैं और जिनसे वे सीखते हैं।

कोई भी रीति हमेशा ही कुछ बुनियादी मूल्यों से निकलती है। उदाहरण के लिए, जब कोई स्कूल सुबह की सभा में कोई

धर्मनिरपेक्ष प्रार्थना शामिल करने का निर्णय लेता है, तो वह दर्शाता है कि वह धर्मनिरपेक्षता और समावेश को महत्त्व देता है। अगर कुछ स्कूल सुबह की सभा में प्रार्थनाओं की जगह राष्ट्र के प्रति संकल्प को शामिल करते हैं, तो वे यह दर्शा रहे होते हैं कि वे देशभक्ति को किसी भी धार्मिक सम्बद्धता पर तरजीह देते हैं। रीतियों का महत्त्व उनके द्वारा प्रदर्शित मूल्यों में होता है, और स्कूल जो चुनाव करते हैं वे उन मूल्यों को आधार बनाकर किए जाते हैं जिन मूल्यों को वे बच्चों के मन में बैठाना चाहते हैं।

दूसरी बात, हम व्यवहारों को रीतियाँ तभी कह सकते हैं जब उनका लगातार पालन किया जाता हो, और इन रीतियों के अर्थ और उद्देश्य की एक साझा समझ हो। उदाहरण के लिए, ऊपर उल्लिखित किसी सुबह की सभा के मानक तब तक मानक नहीं बनेंगे जब तक कि स्कूल के सभी सदस्यों की इन मानकों के बारे में और उनके होने के कारणों के बारे में एक साझा समझ नहीं होगी। स्कूल के नए शिक्षकों और सदस्यों को आमतौर पर पहले से स्थापित इन्हीं मानकों का अभ्यस्त बना दिया जाता है ताकि स्कूल की संस्कृति में निरन्तरता और स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सके।

स्कूल की संस्कृति तथा शिक्षा के लक्ष्य

किसी स्कूल की संस्कृति और उसकी पाठ्यचर्या एक ही संस्थान में साथ-साथ चलते हैं, और इसलिए, वे एक दूसरे से स्वतंत्र कभी नहीं होते। स्कूल की संस्कृति शिक्षा के कुछ ऐसे अतिरिक्त लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करती है जो किसी स्कूल के लिए विशेष होते हैं, उदाहरण के लिए, कल के नेतृत्वकर्ताओं, ईमानदार लोकतांत्रिक नागरिकों, या पर्यावरण और संवहनीयता (sustainability) का मूल्य समझने वाले व्यक्तियों का विकास करना। स्कूल अकसर ऐसे मानक और रीतियाँ विकसित करते हैं, जो इन घोषित लक्ष्यों की तरफ बढ़ने में मदद करते हैं। इन्हें आमतौर पर दो तरीकों से हासिल किया जाता है—

- पाठ्यचर्या या विषयों के तत्वों पर विशिष्ट जोर देना, जो कि आमतौर पर टाइम टेबलों से बहुत स्पष्ट हो जाता है।
- स्कूलों द्वारा उनके संचालन के तरीके, या दूसरे शब्दों में कहें तो स्कूल की संस्कृति के हिस्से के तौर पर अतिरिक्त प्रक्रियाएँ और गतिविधियाँ लागू करना।

हम स्कूल की संस्कृति को दो संकेन्द्रित वृत्तों के रूप में देख सकते हैं। मूल पाठ्यचर्या भीतरी वृत्त में होती है, और एक बाहरी बड़े वृत्त में होती है स्कूल की संस्कृति। स्कूल की संस्कृति पाठ्यचर्या के इर्द-गिर्द एक अधि-परत (Meta layer) बना

लेती है, जो पाठ्यचर्या के आदान-प्रदान को सम्भव बनाती है। यह बाहरी वृत्त सिर्फ पाठ्यचर्या का आदान-प्रदान करने के लिए बनी प्रक्रियाएँ और प्रोटोकॉल ही नहीं होता, बल्कि ये प्रक्रियाएँ व प्रोटोकॉल शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों का उतना ही प्रतिनिधित्व करते हैं जितना कि औपचारिक पाठ्यचर्या करती है।

हमें यह बात समझने की ज़रूरत है कि किसी संस्कृति के अभिप्रेत लक्ष्य होते हैं, और एक संस्कृति होती है जिसे अनुभव किया जाता है। इन दोनों के बीच में अकसर स्पष्ट अन्तर होते हैं। बच्चों को एक निश्चित ढंग से व्यवहार करना सीखते हुए देखा जाता है, जो कि आमतौर पर उनके स्कूल में रहने के समय तक सीमित होता है। वे अपने व्यवहारों को स्कूल की अपेक्षाओं के अनुरूप गढ़ लेते हैं। लेकिन वे इन व्यवहारों का और इन व्यवहारों में अन्तर्निहित मूल्यों का अर्थ अपने हिसाब से लगाते हैं। अनौपचारिक स्थानों, जैसे घर, परिवार में या फिर शिक्षकों या शैक्षणिक स्टाफ़ की गैर-मौजूदगी में विद्यार्थी लक्षित सीखों की चर्चा करते हैं, उनकी विवेचना करते हैं और उन्हें नकारते हुए अपने तर्क देते हैं। लेकिन फिर भी, स्कूली शिक्षा से जुड़ी सांस्कृतिक रीतियों पर बहस करना, और शिक्षा से जुड़ी सीखों को नकारने की बातें करना सीखने के बुनियादी विचारों के साथ एक जुड़ाव की तरह ही है।

स्कूलों को मौजूदा संस्कृति से सीखने की इस अपरिहार्यता को स्वीकारना होगा और परिस्थिति के मुताबिक कार्य करना होगा। इस बात से शिक्षा के दो ऐसे बेहद महत्त्वपूर्ण पहलू हमारे सामने आ जाते हैं, जिनके साथ स्कूलों में विकसित संस्कृतियों के माध्यम से ही जुड़ा जा सकता है, ये पहलू हैं – नैतिक एवं राजनीतिक शिक्षा।

नैतिक शिक्षा

नैतिक शिक्षा को कुछ बुनियादी सिद्धान्तों को समझने और फिर इन सिद्धान्तों को वास्तविक जीवन की स्थितियों में लागू करने की क्षमता विकसित करने के रूप में देखा जाना आम बात है। यह दृष्टिकोण नैतिक शिक्षा और नैतिक विज्ञान के विषयों की बुनियाद रहा है। बच्चों को इस तरह की सूक्तियाँ सिखाई जाती हैं कि 'Cleanliness is next to Godliness' यानी 'स्वच्छता, ईश्वरीयता के बाद दूसरे स्थान पर आती है', या *हितोपदेश* अथवा *जातक कथाओं* की कहानियाँ सुनाई जाती हैं, जो हमेशा इस पंक्ति के साथ खत्म होती हैं 'तो इस कहानी से हमें यह सीख मिलती है कि...।'

इस रवैये की दो गम्भीर सीमाएँ हैं। पहली, कि नैतिक शिक्षा को कुछ सिद्धान्तों को याद करने या समझने तक सीमित कर

दिया जाता है, लेकिन उन्हें वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में कैसे लागू किया जा सकता है, इस बात को शिक्षार्थियों की कल्पना पर छोड़ दिया जाता है। हम सभी एक से जीवन अनुभवों से नहीं गुजरते, इसलिए सिद्धान्तों को लागू करने के लिए ज़रूरी रचनात्मकता तथा संज्ञानात्मक क्षमताएँ सिखाना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल ज़रूर होता है। दूसरी बात, कहानियाँ मददगार होती हैं, लेकिन चूँकि कहानियाँ बिल्कुल जुदा स्थानों व कालों में घटी हुई होती हैं इसलिए उनमें से सिद्धान्तों को निकालने और उन्हें समकालीन समय व स्थितियों में लागू करने के लिए बहुत सारी रचनात्मकता और कल्पना की ज़रूरत होती है। इसके अलावा, हम उन अनुभवों से नहीं गुजरते जो सदियों पहले लोगों को हुए अनुभवों से मिलते-जुलते हों जैसे कि *जातक कथाओं* में हैं और न ही उन राजकुमारों के जीवन अनुभव दूर-दूर तक हमारे अनुभवों जैसे थे जिनके लिए हितोपदेश लिखा गया था। यही बात तब भी लागू होती है जब हम गाँधी या अब्दुल कलाम जैसे आदर्श व्यक्तियों की कहानियाँ सुनाते हैं। हमारे जीवन अनुभव कभी भी उनके अनुभवों से नहीं जुड़ सकते और न ही हमारी क्षमताएँ उनकी क्षमताओं के साथ जोड़ी जा सकती हैं।

इस दृष्टिकोण में, नैतिकता को उपयुक्त शब्दाडम्बर और केवल विनम्रता, सत्य, ईमानदारी आदि के मोटे-मोटे सरलीकृत मूल्यों का इस्तेमाल करने तक सीमित कर दिया जाता है। हकीकत में, नैतिकता सामाजिक रीतियों में अन्तर्निहित होती है। हमारी नैतिकताएँ इस बात से तय होती हैं कि हम उन वास्तविक परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार करते हैं, जब हमारी भावनाएँ और हमारे बोध एक-दूसरे के साथ द्रन्द में होते हैं। नैतिक परिस्थितियाँ भी आमतौर पर दो-या-दो से अधिक महत्वपूर्ण मूल्यों के बीच संघर्ष पैदा करती हैं। हमारे लिए उस समय यह तय करना काफ़ी मुश्किल हो जाता है कि क्या करना ठीक होगा जब हम इस आम समस्या का सामना करते हैं – क्या ऐसी स्थिति में झूठ बोलना ठीक होगा जब हमें लगता है कि सच बोलने से किसी का नुकसान होगा? या ऐसे किसी व्यक्ति से ऐसी चीज़ चुराना कितना उचित है जिसके पास वह चीज़ पहले से ही बहुत अधिक है? ये उस तरह की समस्याएँ हैं जो विद्यार्थियों के सामने आनी ही हैं और शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो ऐसी समस्याओं से निपटने में विद्यार्थियों की मदद करे।

ऐसी स्थिति में ही स्कूलों की प्रचलित संस्कृति मदद करती है। जैसा कि हमने शुरू में देखा था, संस्कृतियाँ ऐसी रीतियाँ होती हैं जिनमें मूल्य अन्तर्निहित होते हैं। विद्यार्थियों से रीतियों का पालन करने की अपेक्षा करना और उन्हें उन स्थापित रीतियों

के पीछे मौजूद तर्क पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करना नैतिक शिक्षा का एक बहुत सीधा और मूल्यवान तरीका होगा। जब विद्यार्थी किसी स्कूल के स्थापित मानकों पर सवाल उठाते हों और उन मानकों को तोड़कर उसके प्रभाव को देखने की कोशिश करते हों, उस वक्त उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता और स्वायत्तता देना उनकी नैतिक स्वायत्तता को विकसित करने के लिए बहुमूल्य साबित होगा।

राजनीतिक शिक्षा

यही दलील विद्यार्थियों को लोकतंत्र से परिचित कराने और उनकी राजनीतिक शिक्षा के लिए भी दी जा सकती है। ऐसा देखा गया है कि नागरिकशास्त्र के विषय के माध्यम से विद्यार्थियों को हमारे संविधान के बारे में शिक्षित करना बिल्कुल ही अपर्याप्त रहा है। यह विद्यार्थियों को लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धान्तों, जैसे स्वतंत्रता और समानता, के बारे में समुचित समझ तक प्रदान नहीं करता, न ही उन्हें संवैधानिक मूल्यों की कोई जानकारी देता है।

स्कूलों के लिए इस तरफ़ आगे बढ़ने का सबसे अच्छा तरीका होगा संसद की एक ऐसी प्रतिकृति को क्रियान्वित करना, जहाँ विद्यार्थी व शिक्षक सदस्य हों, ताकि विद्यार्थियों को लोकतंत्र की एक ठोस व्यावहारिक समझ विकसित करने में मदद मिल सके। स्कूलों को ऐसी संस्कृति विकसित करनी चाहिए जहाँ विद्यार्थी प्राथमिक स्कूल से कुछ महत्वपूर्ण गतिविधियों की जिम्मेदारी लें, जैसे कक्षा में शिक्षण-अधिगम सामग्री (teaching-learning material या टीएलएम) और पुस्तकालय में किताबों का प्रबन्धन। ऐसी गतिविधियों में नियमों और मानकों के साथ चलना और इस वजह से दूसरों के साथ औपचारिक रिश्ते बनाना अपरिहार्य रूप से शामिल होता है। इन जिम्मेदारियों की जटिलता प्राथमिक से माध्यमिक स्कूल में धीरे-धीरे बढ़ सकती है, जब वे विद्यार्थी-संसद जैसे औपचारिक लोकतांत्रिक ढाँचों से जुड़ सकते हैं।

तार्किक चुनाव (चाहे नैतिक हो या राजनीतिक) का अर्थ असम्बद्ध, तटस्थ, सैद्धान्तिक निर्णय के परिणामों को लागू करना नहीं होता, बल्कि सामान्य रूप से सफल मौजूदा रीतियों को हमारी विशेष परिस्थितियों के मुताबिक अनुकरण करना या उन्हें उपयुक्त रूप से संशोधित करना होता है।

विद्यार्थियों की स्वायत्तता और स्कूल की संस्कृति

आखिरी बात, इस सबको सम्भव बनाने के लिए स्कूल की संस्कृतियों को तार्किक चुनाव करने की विद्यार्थियों की स्वायत्तता को एक अनुभवसिद्ध तथ्य के रूप स्वीकार करना होगा। किसी स्कूल की संस्कृति के लिए यह सुनिश्चित करना

ज़रूरी है कि विद्यार्थियों को निष्क्रिय ढंग से सोचने के तरीकों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित न किया जाए – न तो पाठ्यचर्या की तरफ़ से और न ही स्कूल के वयस्क लोगों की तरफ़ से। इसके बजाय, सवाल करने की और यहाँ तक कि कभी-कभार, पाठ्यचर्या में या फिर स्कूल की संस्कृति के माध्यम से लागू किए गए मूल्यों व मानकों को चुनौती दे पाने की आज़ादी

होना किसी भी स्कूल की संस्कृति का एक बुनियादी पहलू होना चाहिए। सवाल उठाने की इस क्रिया में औचित्य और तर्क का आधार होना ज़रूरी है ताकि यह शिक्षाप्रद हो, और सिर्फ़ आलोचना करने के लिए की गई आलोचना न हो, या कि विद्रोही होने भर के लिए किया गया विद्रोह न हो।



प्रकाश अय्यर अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु के स्कूल ऑफ़ एजुकेशन में सह-प्राध्यापक हैं। वे शिक्षा का दर्शनशास्त्र एवं पाठ्यचर्या सिद्धान्त पढ़ाते हैं, और उनकी शोध की रुचि के क्षेत्र नैतिक तथा राजनीतिक शिक्षा हैं। उनसे prakash.iyer@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : भरत त्रिपाठी पुनरीक्षण : उमा सुधीर कॉपी एडिटर : शहनाज़